



ए.एफ.आर.

सुरक्षित दिनांक:- 25.11.2025

निर्णय दिनांक:- 09.02.2026

2026:AHC:LKO:9680-DB

उच्च न्यायालय इलाहाबाद

लखनऊ

आपराधिक अपील संख्या 1633 वर्ष 2022

सुजीत

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा प्रमुख सचिव गृह, लखनऊप्रत्यर्थी (गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता : अतुल वर्मा, अखिलेंद्र प्रताप सिंह

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता : रविश चंद्र मिश्रा, अपर शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या - 1

माननीय न्यायमूर्ति राजन राय

माननीय न्यायमूर्ति राजीव भारती

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव भारती द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत दाण्डिक अपील धारा 374(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अभियुक्त/अपीलार्थी, अर्थात् सुजीत पुत्र नन्हके, निवासी मोहल्ला हनिया टोला, थाना खीरी, जिला लखीमपुर खीरी द्वारा विद्वान सेशन न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी द्वारा सेशन ट्रायल संख्या 15 सन् 2019, अपराध संख्या 198 सन् 2018, थाना खीरी, जिला लखीमपुर खीरी से उद्भूत मामले में पारित दिनांक 06.05.2022 के आक्षेपित निर्णय एवं आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



करते हुए आजीवन कारावास तथा रु. 5,000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया था। अर्थदण्ड अदा न करने की दशा में एक माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना था। अभियुक्त/अपीलार्थी को धारा 498-क, 304-ख भारतीय दण्ड संहिता एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के आरोपों से दोषमुक्त किया गया था। धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन वैकल्पिक आरोप सिद्ध पाया गया। अपीलार्थी कारागार में निरुद्ध है। दिनांक 18.11.2025 के अभिलेख के अनुसार वह परिहार सहित 8 वर्ष, 01 माह एवं 08 दिन कारावास भुगत चुका है।

मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

2. अभियोजन पक्ष की कहानी संक्षेप में यह है कि मृतका हेमा, अपीलार्थी की पत्नी, को दहेज हेतु क्रूरता का शिकार बनाया गया तथा दिनांक 16.06.2018 को उसे आग लगा दी गई, जिसके फलस्वरूप वह दिनांक 05.07.2018 को अपनी जलने की चोटों के कारण मृत्यु को प्राप्त हुई। परिवादी, मृतका के पिता, राजू (पी.डब्ल्यू.-1) ने दिनांक 16.06.2018 को पुलिस रिपोर्ट दर्ज कराते हुए कथन किया कि उसने अपनी पुत्री हेमा का विवाह लगभग तीन वर्ष पूर्व सुजीत पुत्र नन्हके, निवासी हनिया टोला, खीरी से सम्पन्न कराया था। दिनांक 16.06.2018 को लगभग रात्रि 8:00 बजे उसने कुछ शोर सुना और मोहल्ले में आया तथा जब वह उस स्थान की ओर गया तो उसने देखा कि उस घर में, जहां उसकी पुत्री का विवाह हुआ था, अफरा-तफरी मची हुई थी; जब वह घर के निकट पहुंचा तो उसने पाया कि उसकी पुत्री हेमा घर के दरवाजे के बाहर आग में जल रही थी। घर के अंदर कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं था क्योंकि सब भाग गए थे। राजू-पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने कथन में बताया कि जब मृतका को अभियुक्त द्वारा अस्पताल ले जाया गया तो वह भी साथ गया। उसने आगे यह भी कथन किया कि उसकी पुत्री (मृतका) मानसिक रोग से ग्रसित थी और इसी कारण उसने स्वयं अपने ऊपर तेल डालकर स्वयं को आग लगा ली। उसने यह भी कथन किया कि अभियुक्त सुजीत ने हेमा का उपचार करवाया था। परिवादी के अनुसार, उसके दामाद सुजीत पुत्र नन्हके ने सास-अर्जुनिया तथा ननदों, अर्थात् रेखा, शकुंतला एवं रिकी के साथ मिलकर उसकी पुत्री को आग लगाई। उसने (परिवादी ने) अपनी पुत्री को बचाने का हर संभव प्रयास किया, परन्तु तब तक वह गंभीर रूप से जल चुकी थी। वह तत्काल अपनी पुत्री को जिला अस्पताल ले गया जहां उसकी स्थिति अत्यंत गंभीर बताई गई।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



3. उपर्युक्त रिपोर्ट के आधार पर धारा 147, 307 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 17.06.2018 को दोपहर 12:05 बजे दर्ज की गई तथा श्री उमेश प्रताप सिंह (पी.डब्ल्यू.-8), कांस्टेबल, थाना निघासन द्वारा पंजीकृत की गई, जिसने अपने कथन में बताया कि वह उस दिनांक को थाना खीरी पर उपस्थित था तथा लगभग दोपहर 12:05 बजे परिवादी (शिकायतकर्ता) राजू पुत्र ठाकुर प्रसाद, निवासी बुखारी टोला, कस्बा एवं थाना खीरी, थाने पर आया तथा उसने लिखित परिवाद प्रस्तुत किया। उसने कथन किया कि मामले की विवेचना उपनिरीक्षक श्री विशम्भर दयाल सिंह को सौंपी गई। प्रति-परीक्षण के दौरान श्री उमेश प्रताप सिंह (पी.डब्ल्यू.-8) ने कथन किया कि सूचक अकेला ही दोपहर 12:05 बजे परिवाद दर्ज कराने थाने पर पहुंचा था तथा उसने सूचित किया था कि पीड़िता/मृतका अस्पताल में भर्ती है।

4. श्री विशम्भर दयाल सिंह-उपनिरीक्षक (पी.डब्ल्यू.-9), जो प्रारंभ में मामले के विवेचक के रूप में नियुक्त किए गए थे, ने कथन किया कि वर्ष 2018 में वह थाना खीरी के प्रभारी के रूप में तैनात थे। प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 198/2018, धारा 307 एवं 147 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन थाने पर पंजीकृत हुई थी तथा विवेचना उन्हें सौंपी गई थी। उसने आगे कथन किया कि उसी दिनांक, अर्थात् 27.07.2018 को धारा 147 भारतीय दण्ड संहिता हटा दी गई तथा धारा 498-क, 304-ख भारतीय दण्ड संहिता एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 जोड़ी गई (उसकी मृत्यु के पश्चात्), तथा विवेचना सर्किल अधिकारी, सदर को सौंप दी गई। उसने आगे कथन किया कि उसने दिनांक 18.06.2018 को घटनास्थल का निरीक्षण किया तथा घटनास्थल का नक्शा तैयार किया।

5. प्रति-परीक्षण के दौरान श्री विशम्भर दयाल सिंह-उपनिरीक्षक (पी.डब्ल्यू.-9) ने कथन किया कि उसने दिनांक 17.06.2018 को मामले का प्रभार ग्रहण किया, यद्यपि वह सही समय स्मरण नहीं कर सका। उसने आगे कथन किया कि उसे यह सूचना मिली थी कि पीड़िता/मृतका जिला अस्पताल, खीरी में भर्ती है, परन्तु अन्य कार्यों के कारण वह अस्पताल केवल दिनांक 18.06.2018 को ही गया। उसने आगे कथन किया कि यद्यपि वह जानता था कि बेड-हेड टिकट में उपचार संबंधी महत्वपूर्ण विवरण है, फिर भी उसने न तो बेड-हेड टिकट की जांच की और न ही उपचाररत चिकित्सकों या नर्सों के कथन अंकित किए। उसने आगे कथन किया कि वह अस्पताल जाने से पूर्व सूचक के साथ घटनास्थल गया तथा उसने घटनास्थल का नक्शा

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



(प्रदर्श ए-5) तैयार किया। उसने आगे कथन किया कि वह दिनांक 18.06.2018 को अपनी विवेचना के प्रारंभ अथवा समाप्ति के समय को स्मरण नहीं कर सका तथा उसने स्वीकार किया कि उसने केस डायरी की पंक्तियों में यह समय अंकित नहीं किया। उसने आगे कथन किया कि यद्यपि उसे यह सूचना मिली थी कि पीड़िता/मृतका को केरोसिन से जलाया गया था, फिर भी उसने इस संबंध में चिकित्सीय कथन अंकित नहीं किए।

6. श्री आर.के. वर्मा, विवेचक (पी.डब्ल्यू.-10) ने कथन किया कि दिनांक 28.07.2018 को वह सर्किल अधिकारी सदर, लखीमपुर खीरी के पद पर तैनात थे। उन्हें थाना खीरी, जिला खीरी के मामला संख्या 198/2018, धारा 498-क, 304-ख भारतीय दण्ड संहिता एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन विवेचना श्री विशम्भर दयाल सिंह-उपनिरीक्षक (पी.डब्ल्यू.-9) से सौंपी गई। उन्होंने आगे कथन किया कि दिनांक 28.07.2018 को उन्होंने मेमो संख्या 9 तैयार किया तथा विवेचना का प्रभार ग्रहण किया, पूर्व में तैयार मेमो की समीक्षा की तथा जांच रिपोर्ट एवं पोस्टमार्टम रिपोर्ट का परीक्षण किया।

7. प्रति-परीक्षण के दौरान श्री आर.के. वर्मा, विवेचक (पी.डब्ल्यू.-10) ने कथन किया कि मामला प्रारंभ में धारा 307/147 भारतीय दण्ड संहिता के अधीन पंजीकृत हुआ था, परन्तु बाद में इसे धारा 498-क/304-ख भारतीय दण्ड संहिता तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 में परिवर्तित कर दिया गया। उन्होंने आगे कथन किया कि दिनांक 16.06.2018 को पीड़िता/मृतका की प्रारंभिक चिकित्सीय परीक्षा में केरोसिन की गंध अंकित की गई थी, यद्यपि वह यह सत्यापित नहीं कर सके कि जिला अस्पताल में उसका (पीड़िता का) प्रवास कितनी अवधि का था। उन्होंने आगे कथन किया कि उन्होंने न तो बेड-हेड टिकट की जांच की और न ही जिला अस्पताल, लखीमपुर खीरी या डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी सिविल अस्पताल, लखनऊ, जहां पीड़िता/मृतका अपनी चोटों के कारण मृत्यु को प्राप्त हुई, के उपचाररत चिकित्सकों के कथन अंकित किए।

8. चिकित्सीय रिपोर्टों के अनुसार पीड़िता/मृतका को उसके पिता द्वारा जिला अस्पताल, लखीमपुर खीरी में भर्ती कराया गया। पीड़िता/मृतका बेड-हेड टिकट के अनुसार अस्पताल में भर्ती रही, जिसे विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष डॉ. राजेश कुमार-डी.डब्ल्यू.-1 द्वारा प्रस्तुत

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



किया गया। अपने मुख्य परीक्षण में डॉ. राजेश कुमार-डी.डब्ल्यू.-1 ने कथन किया कि दिनांक 18.06.2018 को दोपहर 12:40 बजे मृतका के पिता, अर्थात् राजू (पी.डब्ल्यू.-1) ने निम्नलिखित पृष्ठांकन किया था कि 'मेरे मरीज को लखनऊ रेफर किया गया था तथा एम्बुलेंस-108 आ चुकी थी, परन्तु मैंने अपने मरीज को लखनऊ नहीं ले गया और मैंने एम्बुलेंस वापस भेज दी।' मृतका का उपचार जिला अस्पताल, खीरी में दिनांक 17.06.2018 से 27.06.2018 तक चलता रहा। तत्पश्चात्, जब मृतका की स्थिति बिगड़ने लगी, तो उसे दिनांक 27.06.2018 को डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी सिविल अस्पताल, लखनऊ में भर्ती कराया गया, जहां उसी दिन उसका मृत्युकालिक कथन अंकित किया गया।

9. मृतका की चिकित्सीय परीक्षा दिनांक 16.06.2018 को रात्रि 10:10 बजे जिला अस्पताल, लखीमपुर खीरी में की गई तथा डॉ. राजेश कुमार-पी.डब्ल्यू.-12 ने लगभग 80% जलने की चोटें अंकित कीं तथा पीड़िता के शरीर एवं वस्त्रों से विशेष रूप से केरोसिन तेल की गंध आने की बात नोट की।

10. अभियोजन पक्ष ने डॉ. राजेश कुमार को न्यायालय के समक्ष पी.डब्ल्यू.-12 के रूप में परीक्षित किया। तत्पश्चात् प्रतिरक्षा पक्ष ने उक्त साक्षी को डी.डब्ल्यू.-1 के रूप में परीक्षित किया तथा बेड-हेड टिकट सिद्ध करने का प्रयास किया एवं यह स्थापित करने का प्रयत्न किया कि मृतका ने दिनांक 17.06.2018 को भी एक मृत्युकालिक कथन दिया था, यद्यपि वह इस साक्षी की उपस्थिति में नहीं दिया गया था।

11. दिनांक 06.07.2018 को अपराह्न 3:25 बजे डॉ. गिरीश कुमार शर्मा-पी.डब्ल्यू.-7, परामर्शदाता, बलरामपुर अस्पताल, लखनऊ ने मृतका श्रीमती हेमा पाण्डेय, आयु 22 वर्ष, का पोस्टमार्टम परीक्षण किया। इसकी वीडियो-रिकॉर्डिंग एक अमिताभ सिंह द्वारा की गई। पोस्टमार्टम परीक्षण के दौरान मृतका के शरीर के उन भागों पर, जो जले हुए नहीं थे, पोस्टमार्टम स्टेनिंग पाई गई। पूरे शरीर में कठोर मृत्यु (रिगर मॉर्टिस) उपस्थित थी। मृतका के शरीर पर 90% मरणोत्तरपूर्व (एंटी मॉर्टम) चोटें थीं तथा मृत्यु का कारण सेप्टीसीमिया दर्शाया गया। मृतका के शरीर पर निम्नलिखित मरणोत्तरपूर्व चोटें पाई गई:-

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



“चोट संख्या 1: एक सेप्टिक जलन का घाव, जो सतह से गहरे ऊतकों तक फैला हुआ था, सिर के ऊपरी एवं पिछले भाग को छोड़कर पूरे शरीर पर उपस्थित था।

चोट संख्या 2: जननांग क्षेत्र नहीं जला था।

चोट संख्या 3: दोनों घुटनों के नीचे का क्षेत्र, नितंबों का पिछला भाग, तलवे एवं पैर की अंगुलियां नहीं जली थीं। जलने के घावों में गाढ़ी पीप उपस्थित थी। खोलने एवं परीक्षण पर दोनों फेफड़ों, यकृत, प्लीहा एवं दोनों गुदों में पीप के धब्बे उपस्थित थे।”

12. अपील ज्ञापन में उठाए गए आधारों तथा प्रस्तुत किए गए तर्कों के आधार पर निर्णयार्थ निम्नलिखित बिंदु उत्पन्न होता है:-

(i) क्या अपीलार्थी के विरुद्ध हत्या का आरोप अभियोजन पक्ष द्वारा युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध किया गया है?

13. इस अपील में यह उल्लेखनीय है कि राजू-पी.डब्ल्यू.-1, उमा देवी-पी.डब्ल्यू.-2, कस्तूरी-पी.डब्ल्यू.-3, प्रमोद कुमार-पी.डब्ल्यू.-4 एवं मनोहर लाल-पी.डब्ल्यू.-5, जो मृतका के पिता, मौसी, माता एवं निकट संबंधी हैं, शत्रुपक्षी हो गए हैं।

14. राजू-पी.डब्ल्यू.-1 ने स्पष्ट रूप से कथन किया है कि मृतका मानसिक रूप से अस्वस्थ थी तथा उसने स्वयं अपने ऊपर केरोसिन तेल डाला था और यह कि परिवार संबंधियों के दबाव में दर्ज कराया गया था। यद्यपि उसने उसे केरोसिन तेल डालते हुए नहीं देखा। चिकित्सीय साक्ष्य से यह सिद्ध है कि मृत्यु स्वाभाविक नहीं थी। प्रश्न यह है कि क्या यह हत्या थी? यदि हां, तो क्या यह अपीलार्थी/पति द्वारा कारित की गई थी।

15. राजू-पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने कथन में बताया है कि जब पीड़िता/मृतका को अभियुक्त द्वारा अस्पताल ले जाया गया तो वह भी साथ गया। उसने आगे कथन किया कि उसकी पुत्री (मृतका) मानसिक रोग से ग्रसित थी और इसी कारण उसने स्वयं अपने ऊपर तेल डालकर स्वयं को आग लगा ली। उसने यह भी कथन किया कि अभियुक्त सुजीत ने हेमा का उपचार करवाया था।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



16. अभियोजन पक्ष अपना मामला पूर्णतः दिनांक 27.06.2018 को डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी सिविल अस्पताल, लखनऊ में अंकित किए गए मृत्युकालिक कथन पर आधारित करता है। दिनांक 27.06.2018 का मृत्युकालिक कथन निम्नानुसार है:-

“प्रमाणित किया जाता है कि हेमा पाण्डेय उम्र लगभग 22 वर्ष पत्नी सुजीत पाण्डेय निवासी ग्राम हनिया टोला, पोस्ट-खीरी, जिला-लखीमपुर, जो इस चिकित्सालय में पुरानी जलने की चोट के कारण दिनांक 27/6/18 समय 1:22 PM पर भर्ती हुई थी, जो आज दिनांक 27/6/18 समय 5:20 PM पर मृत्यु पूर्व बयान के समय पूरी तरह से होशोहवास में है।”

डॉ. संध्या चौधरी

27/6/18

दिनांक 27/6/18 समय 5:47 PM

‘मेरा नाम हेमा पाण्डेय है। मेरे पति का नाम सुजीत पाण्डेय है। मेरी उम्र 22 वर्ष है। मैं ग्राम हनिया टोला, पोस्ट खेरी, जिला लखीमपुर खीरी की रहने वाली हूँ। सुबह 7, 8 बजे 16 जून को हमारे पति और सास में लड़ाई हो रही थी। हमारे पति को गुस्सा आ गया, उसने घर में खड़ी मोटरसाइकिल में से पेट्रोल निकालकर मेरे ऊपर डाल दिया और मुझे कमरे में बंद करके मेरे ऊपर माचिस फेंककर जलाकर कमरे से भाग गया और कमरा बंद कर दिया। हम कमरे में जलने लगे। मैंने भागकर कमरा खोला, फिर हम बाहर भागे। बाहर टोले वालों की भीड़ आ गई थी, वे हमारे ऊपर लगी आग को बुझाने लगे, मैं बेहोश हो गई। मेरी सास, मेरी ननदें सब बहुत बदमाश हैं। वे हमको परेशान करती रहती हैं। मैं यह बयान किसी दबाव में नहीं दे रही हूँ। भगवान की कसम, हम सही बोल रहे हैं।’

बयान मेरे द्वारा लिया एवं अंकित किया गया।

ह० अपठनीय,

ह० अपठनीय

27/6/2018

ए.सी.एम. VI

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



“प्रमाणित किया जाता है कि हेमा पाण्डेय उम्र लगभग 22 वर्ष पत्नी सुजीत पाण्डेय जो आज दिनांक 27/6/18 समय 5:47 PM पर मृत्यु पूर्व बयान के समय पूरी तरह से होशोहवास में थी।”

डॉ. संध्या चौधरी

27/6/18

17. विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त संदर्भित साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त/अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया तथा उपरोक्तानुसार दण्डादेश पारित किया।

18. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल वर्मा तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रविश चन्द्र मिश्रा को सुना गया तथा अभिलेख का परिशीलन किया गया।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया निवेदन

19. अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय नहीं है तथा विचारण न्यायालय द्वारा इसे गलत रूप से उचित साक्ष्य मान लिया गया है। अपने निवेदन के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य रूप से यह कहा है कि चिकित्सक द्वारा पीड़िता की 'स्वस्थ मानसिक अवस्था' के संबंध में कोई समाधान अभिलिखित नहीं किया गया है तथा अतः यह तर्क दिया गया है कि चिकित्सक द्वारा पीड़िता की 'स्वस्थ मानसिक अवस्था' के संबंध में किसी प्रमाणीकरण के अभाव में मृत्युकालिक कथन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। यह भी निवेदन किया गया है कि मृत्युकालिक कथन को अन्यथा भी नहीं देखा जा सकता क्योंकि धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अभियुक्त का कथन अंकित करते समय मृत्युकालिक कथन की बातें उसके समक्ष नहीं रखी गई थी।

20. अपने मामले के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित न्यायदृष्टांतों पर निर्भरता रखी है:-

(i) पापाराम्बाका रोसम्मा एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1999) 7 एससीसी 695 में प्रकाशित;

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



- (ii) एजाज अहमद शेख बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2025 (2) एसीआर 804;
- (iii) इरफान उर्फ नाका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 एआईआर एससी 4129;
- (iv) लोकेश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (दाण्डिक अपील संख्या 1371 सन् 2015, निर्णीत दिनांक 28.01.2023), 2023 (3) एडीजे 47 में प्रकाशित;
- (v) नरेश कुमार बनाम कलावती एवं अन्य, (2021) (16) एससीसी 158 में प्रकाशित;
- (vi) रामेश्वर लाल चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2023 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1127;
- (vii) राधेय जायसवाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2024 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2649;
- (viii) दिलावर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (दाण्डिक अपील संख्या 5591 सन् 2019, निर्णीत दिनांक 09.08.2024); तथा
- (ix) समसुल हक बनाम असम राज्य: (2019) 18 एससीसी 161।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा किया गया निवेदन

21. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का निवेदन है कि विद्वान सेशन न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी द्वारा पारित दिनांक 06.05.2022 का दोषसिद्धि का निर्णय एवं आदेश सुविचारित है, साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन पर आधारित है तथा इसमें कोई ऐसी अवैधता, विकृति या तात्त्विक अनियमितता नहीं है जो इस न्यायालय को अपीलीय अधिकारिता में हस्तक्षेप करने हेतु प्रेरित करे। उन्होंने आगे निवेदन किया कि विधि सुस्थापित है कि यदि मृत्युकालिक कथन को स्वैच्छिक, सत्य एवं विश्वसनीय पाया जाए तो दोषसिद्धि अकेले उसी के आधार पर की जा सकती है तथा नियम के रूप में किसी संपुष्टि की आवश्यकता नहीं है।

22. दिनांक 17.06.2018 के कथित पूर्ववर्ती मृत्युकालिक कथन के संबंध में विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का निवेदन है कि ऐसे कथन की कोई बात अभिलेख पर सिद्ध नहीं की गई है तथा अतः उसके अस्तित्व के मात्र उल्लेख से दिनांक 27.06.2018 के परवर्ती

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



मृत्युकालिक कथन, जो सम्यक् रूप से सिद्ध किया गया है, के साक्ष्यिक मूल्य में कोई कमी नहीं आती।

23. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता का अंतिम निवेदन है कि यद्यपि विवेचना में कुछ त्रुटियां इंगित की गई हैं, तथापि दोषपूर्ण विवेचना स्वयं में दोषमुक्ति का आधार नहीं है, विशेष रूप से जब अभिलेख पर अन्य विश्वसनीय साक्ष्य अभियुक्त के अपराध की ओर स्पष्ट रूप से संकेत करता हो।

विश्लेषण

24. हमने पाया है कि अभियोजन पक्ष का मामला मुख्य रूप से मृतका के मृत्युकालिक कथन पर आधारित है तथा अतः यह देखा जाना है कि क्या अपीलार्थी द्वारा इसे प्रश्नगत करने हेतु उठाए गए विशिष्ट तर्क पर अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में मृत्युकालिक कथन पर निर्भर रहा जा सकता है?

25. मृत्युकालिक कथन को पूर्व में उद्धृत किया जा चुका है। हम पाते हैं कि चिकित्सक द्वारा किया गया प्रमाणीकरण पीड़िता की स्वस्थ मानसिक अवस्था के संबंध में सचेत समाधान अभिलिखित नहीं करता, जिसके होने पर ही पीड़िता वैध मृत्युकालिक कथन दे सकती थी। इसके कारण अभिलेख के मुख से ही स्पष्ट हैं। प्रस्तुत मामले में पीड़िता को 90% जलने की चोटें आई थीं। ऐसी शारीरिक अवस्था में पीड़िता आघातग्रस्त होगी तथा चिकित्सक सामान्यतः पीड़ा से राहत हेतु विभिन्न औषधियां देते हैं, परन्तु ऐसी औषधियों के प्रभाव की भी जांच की जानी आवश्यक होगी। कुछ औषधियां तंद्रा उत्पन्न कर सकती हैं अथवा पीड़िता की आघातग्रस्त अवस्था से दुःस्वप्न (हैल्यूसिनेशन) हो सकते हैं। पीड़िता की मानसिक अवस्था के संबंध में संदेह उत्पन्न होगा तथा जब तक चिकित्सक पीड़िता की मानसिक स्वस्थता को प्रमाणित नहीं करता, न्यायालय सामान्यतः ऐसे मृत्युकालिक कथन पर निर्भर रहने में अनिच्छुक रहेगा। इसी संदर्भ में हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में सार पाते हैं कि मृत्युकालिक कथन देते समय पीड़िता की मानसिक स्वस्थता के संबंध में, तथ्यतः, किसी समाधान के अभिलेखन के अभाव में, अपीलार्थी को हत्या कारित करने का दोषसिद्ध करने हेतु ऐसे मृत्युकालिक कथन पर निर्भर रहना पूर्णतः सुरक्षित प्रतीत नहीं होता।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



26. इस संबंध में अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के लोकेश एवं अन्य (पूर्वोक्त) के वाद में दिए गए निर्णय पर निर्भरता रखी है, जिसमें इस न्यायालय ने पैरा-45 से 50 में निम्नलिखित अवलोकन किए हैं:-

45. इसलिए यह देखा जाना चाहिए कि क्या पीड़िता मृत्यु पूर्व बयान देने की स्थिति में थी तथा क्या यह सुनिश्चित करने हेतु अभियोजन पक्ष द्वारा आवश्यक सावधानी बरती गई थी कि पीड़िता कथन देने हेतु उचित मानसिक अवस्था में थी।

46. प्राथमिक साक्ष्य कि पीड़िता मृत्युकालिक कथन देने हेतु स्वस्थ मानसिक अवस्था में थी, उपचाररत चिकित्सक का है, जिसे पी.डब्ल्यू.-13 के रूप में परीक्षित किया गया है। हमने पाया है कि इस साक्षी ने अपने कथन में पीड़िता की गंभीर स्थिति का उल्लेख किया है। मृत्युकालिक कथन पर चिकित्सक द्वारा यह समाधान अभिलिखित नहीं है कि पीड़िता स्वैच्छिक कथन देने हेतु स्वस्थ मानसिक अवस्था में थी। पी.डब्ल्यू.-1 ने अन्यथा यह स्वीकार किया है कि जब पीड़िता को लगभग सायं 6:00 बजे एस.एन. मेडिकल कॉलेज लाया गया, तब वह बेहोश थी। उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) दिए जाने के पश्चात् ही पीड़िता की स्थिति में सुधार हुआ और वह सचेत हुई। यह स्पष्ट नहीं है कि घायल पीड़िता को किस प्रकार की प्राथमिक चिकित्सा दी गई थी, परन्तु उसकी गंभीर स्थिति को देखते हुए यह तर्कसंगत है कि उसे किसी प्रकार की दर्दनिवारक औषधि दी गई होगी। ऐसी परिस्थितियों में चिकित्सक द्वारा मात्र यह अभिलिखित कर देना कि रोगी सचेत थी, पर्याप्त नहीं था। पीड़िता की स्वस्थ मानसिक अवस्था के संबंध में विशिष्ट समाधान अपेक्षित था। चिकित्सक द्वारा ऐसा कोई समाधान अभिलिखित नहीं किया गया है। मात्र यह कहना कि रोगी चिकित्सकीय रूप से स्वस्थ है, रोगी की स्वस्थ मानसिक अवस्था के संबंध में समाधान के तुल्य नहीं है। अभियोजन साक्ष्य से ही यह स्पष्ट है कि पीड़िता की बोलने की क्षमता गंभीर रूप से प्रभावित थी।

47. अतः हम इस संबंध में संदिग्ध हैं कि क्या पीड़िता ऐसी उचित मानसिक अवस्था में थी जिसमें वह एक सचेत स्वैच्छिक कथन दे सके, जो मृत्युकालिक कथन कहलाने हेतु अर्हता रखता हो। मजिस्ट्रेट/उप-जिलाधिकारी, जिसने पीड़िता का मृत्युकालिक कथन अंकित

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



किया, ने भी यह स्वीकार किया है कि पीड़िता से उसकी स्वस्थ मानसिक अवस्था के संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था।

48. इस बिंदु पर हम उच्चतम न्यायालय द्वारा पापाराम्बाका रोसम्मा एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1999) 7 एससी 695 में किए गए अवलोकन का संदर्भ लेना चाहेंगे, जिसमें न्यायालय ने मृत्युकालिक कथन का उल्लेख करते हुए यह अवलोकित किया कि कथन अंकित करते समय रोगी के सचेत होने का मात्र कथन पर्याप्त नहीं है। एक ऐसे मामले में जहां घायल को 90% जलने की चोटें आई थीं, मृत्युकालिक कथन को स्वीकार करने से पूर्व घायल की स्वस्थ मानसिक अवस्था का अभिनिर्धारण किया जाना आवश्यक था। निर्णय का पैरा-9 निम्नानुसार पुनरुत्पादित है:-'

"9. यह सही है कि चिकित्सा अधिकारी डॉ. के. विष्णुप्रिया देवी (पी.डब्ल्यू.-10) ने मृत्युकालिक कथन के अंत में यह प्रमाणित किया था कि कथन अंकित करते समय रोगी सचेत थी। अभिलेख पर यह आया है कि घायल श्रीमती वेंकट रमणा को व्यापक जलने की चोटें आई थीं। पोस्टमार्टम करने वाले डॉ. पी. कोटेश्वर राव (पी.डब्ल्यू.-9) ने कथन किया कि घायल को 90% जलने की चोटें आई थीं। इस मामले में, जैसा कि पूर्व में कथन किया गया, अभियोजन पक्ष का मामला अकेले मृत्युकालिक कथन पर आधारित था। अतः अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक था कि वह मृत्युकालिक कथन को वास्तविक, सत्य एवं समस्त संदेहों से मुक्त सिद्ध करे तथा यह कि वह तब अंकित किया गया था जब घायल स्वस्थ मानसिक अवस्था में थी। हमारी राय में डॉ. श्रीमती के. विष्णुप्रिया देवी (पी.डब्ल्यू.-10) द्वारा अंत में संलग्न प्रमाणपत्र इस अपेक्षा का अनुपालन नहीं करता क्योंकि वह यह प्रमाणित करने में विफल रही कि मृत्युकालिक कथन अंकित करते समय घायल स्वस्थ मानसिक अवस्था में थी। उक्त विशेषज्ञ का प्रमाणपत्र अंत में केवल यह कहता है कि कथन अंकित करते समय रोगी सचेत थी। इन तात्त्विक चूकों को देखते हुए मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श पी-14) को सत्य एवं वास्तविक तथा घायल की स्वस्थ मानसिक अवस्था में दिए जाने के रूप में स्वीकार करना सुरक्षित नहीं होगा। निचली अदालतों के निर्णयों से प्रतीत होता है कि इस पहलू को ध्यान में नहीं रखा गया तथा फलस्वरूप उक्त मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श पी-14) को सत्य, वास्तविक तथा स्वस्थ मानसिक अवस्था में दिए जाने के रूप में स्वीकार करने में त्रुटि की गई। चिकित्सा विज्ञान में सचेत होना "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



तथा स्वस्थ मानसिक अवस्था में होना, ये दो पृथक अवस्थाएं हैं और पर्यायवाची नहीं हैं। कोई व्यक्ति सचेत हो सकता है परन्तु आवश्यक नहीं कि वह स्वस्थ मानसिक अवस्था में भी हो। निचली अदालतों द्वारा इस भेद की अनदेखी की गई।”

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

49. पापाराम्बाका रोसम्मा (पूर्वोक्त) के मामले में किए गए अवलोकन को उच्चतम न्यायालय के एक परवर्ती निर्णय नरेश कुमार बनाम कलावती एवं अन्य, (2021) (16) एससीसी 158 में पुनः प्रतिपादित किया गया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त उद्धृत पैरा-9 का संदर्भ लेने के पश्चात् पैरा-13 में निम्नानुसार अवलोकित किया:-

“13. प्रस्तुत मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, यह देखते हुए कि मृतका के कथनों में परिवर्तन होते रहे हैं, मृत्युकालिक कथन देने हेतु मृतका की मानसिक स्वस्थता के संबंध में, चिकित्सक की उपस्थिति सहित, कोई साक्ष्य नहीं है, मृत्युकालिक कथन की सत्यता एवं विश्वसनीयता संदिग्ध बनी रहती है। आत्महत्या के संभाव्य प्रतिरक्षा को मात्र अस्वीकार करते हुए दोषमुक्ति को पलटकर प्रत्यर्थियों को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होगा।”

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

50. मजिस्ट्रेट/उप-जिलाधिकारी का कथन स्पष्ट है कि मृत्युकालिक कथन की विषय-वस्तु पीड़िता को पढ़कर नहीं सुनाई गई थी तथा इस संबंध में मृत्युकालिक कथन में अन्यथा कोई समाधान अभिलिखित नहीं है। सुरेन्द्र कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2011) 10 एससीसी 173 में उच्चतम न्यायालय ने मृत्युकालिक कथन को इस आधार पर भी प्रश्नगत किया था कि मृत्युकालिक कथन की विषय-वस्तु पीड़िता को पढ़कर सुनाए जाने संबंधी ऐसा समाधान नदारद था। निर्णय के पैरा संख्या 25 में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकित किया:-

“25. अभियोजन पक्ष के अनुसार, घटना दिनांक 26.06.1991 को रात्रि 2 बजे घटित हुई तथा उसके कथन के अनुसार, जलने की घटना पूर्ववर्ती दिवस, अर्थात् 25.06.1991 की सायं हुई थी। मृत्युकालिक कथन में कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा यह प्रमाणपत्र नहीं था कि यह मृतका द्वारा दिया गया स्वैच्छिक कथन था तथा उसने कथन उसे पढ़कर सुनाया था।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



मृत्युकालिक कथन को चिकित्सक द्वारा सत्यापित भी नहीं किया गया था। जैसा कि पूर्व में कथन किया गया, यद्यपि मजिस्ट्रेट ने यह कथन किया था कि कथन हिन्दी एवं पंजाबी की मिश्रित बोली में दिया गया था, परन्तु कथन केवल हिन्दी में अंकित किया गया था। एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि साक्ष्य था कि कमलेश रानी फोर्टविन एवं पेथिडीन इंजेक्शनों के प्रभाव में थी तथा सामान्य सतर्कता की स्थिति में नहीं मानी जा सकती थी। हमारी राय में विचारण न्यायालय ने मृत्युकालिक कथन को, जो संदिग्ध परिस्थितियों से आच्छादित था तथा अभियोजन पक्ष की कहानी के विपरीत था, सर्वथा अस्वीकार करके तथा अपीलार्थी को दोषमुक्त करके उचित कार्य किया।”

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

27. **पापाराम्बाका रोसम्मा** (पूर्वोक्त), जिस पर उपर्युक्त उल्लिखित **लोकेश** (पूर्वोक्त) के निर्णय में निर्भरता रखी गई है, में यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि चिकित्सा विज्ञान में सचेत होना तथा स्वस्थ मानसिक अवस्था में होना, ये दो पृथक अवस्थाएं हैं और पर्यायवाची नहीं हैं। कोई व्यक्ति सचेत हो सकता है परन्तु आवश्यक नहीं कि वह स्वस्थ मानसिक अवस्था में भी हो।

28. दिनांक 27.06.2018 के मृत्युकालिक कथन का प्रमाणीकरण केवल यह दर्शाता है कि पीड़िता (मृतका) ‘सचेत’ थी। डॉ. संध्या चौधरी-पी.डब्ल्यू.-11 ने स्वीकार किया कि जले हुए रोगियों को प्रशामक (सेडेटिव) औषधियां दी जाती हैं तथा उसने यह सत्यापित नहीं किया कि पीड़िता (मृतका) को कौन-सी औषधियां दी गई थीं। ‘सचेतता’ तथा ‘स्वस्थ मानसिक अवस्था’ के बीच का भेद माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **पापाराम्बाका रोसम्मा एवं अन्य** (पूर्वोक्त) के मामले में प्राधिकारपूर्वक स्पष्ट किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मानसिक स्वस्थता के संबंध में प्रमाणीकरण के अभाव में मृत्युकालिक कथन अविश्वसनीय हो जाता है।

29. उपर्युक्त मत का इस न्यायालय की समकक्ष खण्डपीठों द्वारा **रामेश्वर लाल चौहान** (पूर्वोक्त), **राधेय जायसवाल एवं अन्य** (पूर्वोक्त) तथा **दिलावर सिंह** (पूर्वोक्त) में सुसंगत रूप से अनुसरण किया गया है।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



30. कथित मृत्युकालिक कथन अंकित किए जाने से पूर्व डॉक्टर संध्या चौधरी (पी.डब्ल्यू.-11) द्वारा किया गया प्रमाणीकरण केवल इस आशय का था कि पीड़िता पूर्णतः सचेत थी, न कि यह कि वह ऐसा कथन देने हेतु स्वस्थ मानसिक अवस्था में थी।

31. यह उल्लेखनीय है कि मृत्युपूर्व कथन दर्ज करते समय मजिस्ट्रेट को पीड़िता की उचित मानसिक दशा के सन्दर्भ में स्वयं को सन्तुष्ट करना होता है। श्री अभिषेक पाठक (पी.डब्ल्यू.-6), उपखण्ड मजिस्ट्रेट, जिन्होंने वर्तमान प्रकरण में मृत्युपूर्व कथन दर्ज किया, ने अपने प्रतिपरीक्षण में कहा - "कि जिस समय वे बयान दर्ज कर रहे थे, मृतका मानसिक रूप से बयान देने की उचित दशा में थी, और वे यह नहीं बता सकते कि मृतका कितने प्रतिशत जली थी।" यह प्रश्नास्पद है कि श्री अभिषेक पाठक (पी.डब्ल्यू.-6) इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचे कि पीड़िता "उचित मानसिक दशा" में थी। यह भी अभिलेख से स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने पीड़िता की "उचित मानसिक दशा" का पता लगाने के लिए उससे कोई प्रश्नावली प्रस्तुत की थी या नहीं, क्योंकि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2002) 6 SCC 710** में ऐसे तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि "यह वास्तव में एक अति-तकनीकी दृष्टिकोण है कि चिकित्सक का प्रमाणीकरण इस आशय का था कि रोगी होश में है और यह प्रमाणित नहीं किया गया कि रोगी उचित मानसिक दशा में है, विशेषकर जब मजिस्ट्रेट ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से कहा हो कि उसने रोगी से जो प्रश्न पूछे थे और प्राप्त उत्तरों से वह सन्तुष्ट हुआ कि रोगी उचित मानसिक दशा में था जिसके पश्चात् उसने मृत्युपूर्व कथन दर्ज किया।" वर्तमान प्रकरण में न केवल चिकित्सक ने मात्र यह कहा है कि पीड़िता होश में थी, वरन् मजिस्ट्रेट ने भी उसकी मानसिक स्वस्थता के सन्दर्भ में अपनी सन्तुष्टि का आधार नहीं बताया है। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वयं को सन्तुष्ट करने के लिए उससे कोई प्रश्न नहीं पूछा।

32. इसके अतिरिक्त यहाँ माननीय उच्चतम न्यायालय के **कांची कोमुरम्मा बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य 1996 SCC (Cri) 31** के निर्णय का उल्लेख करना भी उचित है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मृत्युपूर्व कथन दर्ज किया गया यह स्वयं में मृत्युपूर्व कथन की सत्यता का प्रमाण नहीं है, जो स्वीकार्यता प्राप्त करने के लिए न्यायालय की जाँच की कसौटी पर अभी भी खरा उतरना चाहिए। मजिस्ट्रेट को मृत्युपूर्व कथन

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



दर्ज करते समय कुछ सुरक्षात्मक उपाय करने होते हैं। मजिस्ट्रेट को मृत्युपूर्व कथन दर्ज करने से पूर्व स्वयं को सन्तुष्ट करना होगा कि मृतका बयान देने की उचित मानसिक दशा में है। उसे यह सन्तुष्टि मृत्युपूर्व कथन दर्ज करने से पूर्व अभिलिखित करनी चाहिए और यदि कोई चिकित्सक उपलब्ध हो, तो बयान देने के लिए रोगी की स्वस्थता के बारे में उसकी राय भी लेनी चाहिए, और अभियोजन को विधि द्वारा ज्ञात तरीके से विचारण में वह राय साबित करनी चाहिए।

33. वर्तमान प्रकरण में मजिस्ट्रेट ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया। हम **खुशाल राव बनाम बम्बई राज्य AIR 1958 SC 22** के प्रकरण का भी उल्लेख करना चाहेंगे, जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णीत किया गया था, जिसमें मृत्युपूर्व कथन के साक्ष्यिक मूल्य के सम्बन्ध में विधि की विस्तृत विवेचना की गयी है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :-

"(16) साक्ष्य अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों और भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों एवं इस न्यायालय के निर्णीत प्रकरणों की समीक्षा करने के पश्चात् हम मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के उपर्युक्त मत से सहमत होते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि (1) यह विधि का परम नियम नहीं माना जा सकता कि जब तक मृत्युपूर्व कथन की संपुष्टि न हो, वह अकेले दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता; (2) प्रत्येक प्रकरण का निर्णय उसके अपने तथ्यों पर उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए जिनमें मृत्युपूर्व कथन दिया गया था; (3) यह सामान्य प्रस्थापना के रूप में नहीं कहा जा सकता कि मृत्युपूर्व कथन अन्य साक्ष्यों की तुलना में दुर्बल प्रकार का साक्ष्य है; (4) मृत्युपूर्व कथन अन्य साक्ष्यों के समान स्तर पर खड़ा है और उसे आस-पास की परिस्थितियों के आलोक में तथा साक्ष्य के मूल्यांकन को नियंत्रित करने वाले सिद्धान्तों के सन्दर्भ में परखा जाना चाहिए; (5) एक सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा उचित ढंग से, अर्थात् प्रश्नोत्तर के रूप में और यथासम्भव कथन करने वाले के शब्दों में दर्ज किया गया मृत्युपूर्व कथन, उस मृत्युपूर्व कथन की तुलना में बहुत उच्चतर स्थान पर है जो मौखिक साक्ष्य पर निर्भर करता है और जो मानवीय स्मृति एवं मानवीय चरित्र की सभी कमियों से पीड़ित हो सकता है; और (6) मृत्युपूर्व कथन की विश्वसनीयता जाँचने के लिए न्यायालय को मृत व्यक्ति के अवलोकन के अवसर जैसी परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा, उदाहरण के "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



लिए, यदि अपराध रात को हुआ हो तो क्या पर्याप्त प्रकाश था; क्या बयान देते समय उसके नियंत्रण से परे परिस्थितियों से उसकी तथ्यों को याद रखने की क्षमता प्रभावित नहीं हुई थी; कि यदि मृत्युपूर्व कथन के कई अवसर रहे हों तो बयान उनमें एकरूप रहा हो और यह कि बयान जल्द से जल्द दिया गया हो और यह हितबद्ध पक्षों द्वारा प्रशिक्षण/सिखाये जाने का परिणाम न हो।"

34. उपर्युक्त विधि की कसौटी पर कसने से अभियोजन द्वारा आधार बनाया गया मृत्युपूर्व कथन परीक्षण में खरा नहीं उतरता और विश्वसनीय नहीं है। उपर्युक्त के अतिरिक्त, हम मृत्युपूर्व कथन पर प्रश्न उठाते हुए अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में भी सार पाते हैं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित परिस्थितियाँ ध्यान देने योग्य हैं। दिनांक 27.06.2018 का मृत्युपूर्व कथन अभियोजन की कहानी से सर्वथा भिन्न बात कहता है और यह आरोप लगाता है कि मोटर साइकिल से पेट्रोल निकाल कर मृतका पर डाला गया और घटना प्रातः 7:00 से 8:00 बजे के मध्य हुई। विवेचना अधिकारी ने प्रतिपरीक्षण में यह स्वीकार किया कि चिकित्सा जाँच में मिट्टी के तेल की गन्ध दर्ज की गयी थी, जबकि मृत्युपूर्व कथन पेट्रोल की बात करता है। मृतका के पिता, नामतः राजू, जो परिवादी भी हैं, ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना शाम के समय हुई और मिट्टी का तेल प्रयोग किया गया था, जो संस्करण प्राथमिकी की विषय-वस्तु और समसामयिक चिकित्सा जाँच से भी समर्थित है। डॉ. राजेश कुमार (पी.डब्ल्यू.-12), जिन्होंने दिनांक 16.06.2018 को रात्रि 10:10 बजे मृतका की चिकित्सा जाँच की, ने विशेष रूप से कहा है कि मृतका के वस्त्रों और शरीर से मिट्टी के तेल की स्पष्ट गन्ध आ रही थी। उन्होंने अपने प्रतिपरीक्षण में यह भी स्पष्ट किया कि पेट्रोल और मिट्टी के तेल की गन्ध अलग-अलग होती है और मिट्टी का तेल सामान्यतः पहचाना जा सकता है। किन्तु मृत्युपूर्व कथन मोटर साइकिल से पेट्रोल निकाल कर पीड़िता को आग लगाने की बात करता है जो अभियोजन के प्रकरण से असंगत है। अभियोजन की ओर से इस मूलभूत विसंगति का पीड़िता के विवरण में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया, चाहे विवेचना अधिकारी के माध्यम से हो या चिकित्सीय साक्ष्य के माध्यम से।

35. इसके अतिरिक्त, प्राथमिकी और साक्षियों के बयानों में घटना का समय, मृत्युपूर्व कथन में उल्लिखित समय से भिन्न है, जिसका अभियोजन द्वारा कोई सन्तोषजनक "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, जिससे मृत्युपूर्व कथन की सत्यता और विश्वसनीयता के सम्बन्ध में संदेह उत्पन्न होता है।

36. मृत्युपूर्व कथन पर विश्वास करने से पूर्व न्यायालय को पूर्णतः सन्तुष्ट होना आवश्यक है कि चूँकि कथन पूर्ण विश्वास उत्पन्न करता है और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निरन्तर निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार सख्ती से दर्ज किया गया है।

37. यह भी सुस्थापित है कि मृतका का होश में होना मात्र पर्याप्त नहीं है; न्यायालय को यह सन्तुष्ट होना चाहिए कि मृतका बयान देने की उचित मानसिक दशा में थी। कथन पूर्ण होना चाहिए और ऐसी परिस्थितियों में दिया जाना चाहिए जिनसे उसके स्वैच्छिक और सत्य होने के सन्दर्भ में कोई संदेह न रहे। सामान्यतः ऐसी सन्तुष्टि चिकित्सा विशेषज्ञ द्वारा अभिलिखित की जानी चाहिए और स्वस्थता का प्रमाण-पत्र मृत्युपूर्व कथन की स्वैच्छिकता की पुष्टि करने के लिए प्राप्त किया जाना चाहिए। अभिलेखन प्राधिकारी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मृत्युपूर्व कथन पूर्ण और स्वैच्छिक रूप से दिया गया है, अर्थात् वह किसी को सिखाने-पढ़ाने, संकेत देने या कल्पना का परिणाम न हो। बयान को मृतका की मानसिक सजगता और स्पष्टता प्रतिबिम्बित करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसे मृत्युपूर्व कथन की विषय-वस्तु को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अन्तर्गत अभियुक्त की परीक्षा के दौरान उसके समक्ष विशेष रूप से रखा जाना चाहिए ताकि उसे स्पष्टीकरण देने का उचित अवसर मिले, जो इस प्रकरण में नहीं किया गया है।

38. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए मुख्यतः मृत्युपूर्व कथन पर आश्रय लिया। किन्तु मृत्युपूर्व कथन की विषय-वस्तु को धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत बयान दर्ज करते समय अभियुक्त के समक्ष नहीं रखा गया। यह वास्तव में चिन्ता का विषय है कि विचारण न्यायालय ने मृतका द्वारा अपने मृत्युपूर्व कथन में दिये गये अभिशंसनात्मक साक्ष्य को विशेष रूप से प्रश्न के रूप में नहीं रखा। इससे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परिस्थिति छूट गयी। मृतका ने अपने बयान (मृत्युपूर्व कथन) में कहा था कि अभियुक्त ने उस पर पेट्रोल डाला और आग लगा दी। मृत्युपूर्व कथन का यह विशेष अभिशंसनात्मक भाग अभियुक्त के समक्ष उसका स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए नहीं रखा

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



गया। यद्यपि मृत्युपूर्व कथन को अभियुक्त को दोषी ठहराने का एकमात्र आधार माना गया, किन्तु उसकी विषय-वस्तु धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दर्ज बयान में अभियुक्त के समक्ष नहीं रखी गयी। स्पष्टः अभियुक्त को इस महत्वपूर्ण परिस्थिति की व्याख्या करने का अवसर नहीं दिया गया। विचारण के दौरान धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत बयान दर्ज करना कोई रस्मी कार्यवाही नहीं है। धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता अभियुक्त के हितों की रक्षा करने के लिए प्रक्रिया निर्धारित करती है। स्पष्टः इस महत्वपूर्ण बिन्दु पर स्पष्टीकरण न माँगे जाने के कारण अभियुक्त को पूर्वाग्रह हुआ है।

39. यह निर्विवाद है कि धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दर्ज बयान में मृत्युपूर्व कथन की विषय-वस्तु अपीलार्थी के समक्ष नहीं रखी गयी। यह भी सुस्थापित है कि जब तक ऐसे मृत्युपूर्व कथन की विषय-वस्तु अभियुक्त के समक्ष न रखी जाए, अभियोजन को ऐसे मृत्युपूर्व कथन की विषय-वस्तु पर आश्रय लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सामसुल हक (सुप्रा)** में पैरा 21 और 22 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :

"21. हमारे मतानुसार सबसे महत्वपूर्ण पहलू और वह जो अभियोजन के प्रकरण में कील ठोकती है, वह तरीका है जिसमें न्यायालय ने अभियुक्त के समक्ष प्रकरण रखा और धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दर्ज बयान। कम से कम यह कहा जा सकता है कि यह सतही था।

22. यह सुस्थापित है कि उल्लिखित निर्णयों के अनुसार अभिशंसनात्मक सामग्री अभियुक्त के समक्ष रखी जानी चाहिए ताकि उसे अपना बचाव करने का उचित अवसर मिले। यह ऑडी अल्टरम पार्टम के सिद्धांतों की मान्यता है। उपर्युक्त उल्लिखित निर्णयों के अतिरिक्त असरफ अली बनाम असम राज्य (2008) 16 SCC 328 के इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना उपयोगी होगा। सुसंगत टिप्पणियाँ निम्नलिखित पैराओं में हैं :

21. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 न्यायालय पर जाँच या विचारण में अभियुक्त से प्रश्न पूछने का दायित्व डालती है ताकि वह उसके विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी भी परिस्थिति की व्याख्या कर सके। इससे यह आवश्यक परिणाम निकलता है कि

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली प्रत्येक सारभूत परिस्थिति उसके समक्ष विशेष रूप से, स्पष्ट रूप से और पृथक् रूप से रखी जानी चाहिए और ऐसा न करना एक गम्भीर अनियमितता है जो विचारण को दूषित करती है, यदि यह दर्शाया जाए कि अभियुक्त को पूर्वाग्रह हुआ।

22. धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता का उद्देश्य न्यायालय और अभियुक्त के मध्य सीधा संवाद स्थापित करना है। यदि साक्ष्य का कोई बिन्दु अभियुक्त के विरुद्ध महत्वपूर्ण है और दोषसिद्धि उस पर आधारित करने का विचार है, तो यह उचित और समुचित है कि अभियुक्त से उस विषय में पूछा जाए और उसे उसकी व्याख्या करने का अवसर दिया जाए। जहाँ विचारण न्यायालय द्वारा अभियोजन साक्ष्य में किसी अभिशंसनात्मक सामग्री पर कोई विशेष प्रश्न नहीं पूछा गया हो, तो वह विचारण को दूषित करेगा। निश्चित रूप से ये सब इस शर्त के अधीन हैं कि क्या उनसे न्याय का दुराचरण हुआ या पूर्वाग्रह हुआ। इस न्यायालय ने एस. हरनाम सिंह बनाम राज्य (AIR 1976 SC 2140) में दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 342 (दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के समतुल्य) से सम्बन्धित मामले में भी यही मत व्यक्त किया था। विचारण न्यायालय द्वारा अपने प्रासंगिक पहलुओं में अभिशंसनात्मक सामग्री न दर्शाया जाना अभियोजन के प्रकरण की कमज़ोरी को और बढ़ाता है। धारा 313 के अन्तर्गत अभियुक्त का बयान दर्ज करना एक उद्देश्यहीन कार्यवाही नहीं है।

23. उपर्युक्त टिप्पणियाँ करते हुए इस न्यायालय ने शिवाजी सहाबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 SCC 793 में तीन न्यायाधीशों की पीठ के अपने पूर्व निर्णय का भी उल्लेख किया, जिसमें अभियोजन साक्ष्य में उसके विरुद्ध प्रकट होने वाली किसी महत्वपूर्ण परिस्थिति पर अभियुक्त से प्रश्न न पूछने के परिणाम और यह अपेक्षा कि अभियुक्त का ध्यान प्रत्येक अभिशंसनात्मक सामग्री की ओर आकृष्ट किया जाए ताकि वह उसकी व्याख्या कर सके, पर विचार किया गया था। सामान्यतः ऐसी स्थिति में अभियुक्त के समक्ष न रखी गयी ऐसी सामग्री को अपवर्जित किया जाना चाहिए। निस्संदेह यह मान्यता है कि जहाँ धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत सतही परीक्षा हो, वहाँ विषय अभियोजन बन्द होने के जिस चरण में टुटि हुई, उसी चरण से पुनः विचारण करने के निदेश के साथ विचारण न्यायालय को विप्रेषण के लिए सक्षम है।"

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



40. अएजाज अहमद शेख बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (सुप्रा) के प्रकरण में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :

"28. निर्णय से विदा लेने से पहले, हम एक सुझाव देना चाहते हैं। इस न्यायालय में ऐसे कई आपराधिक अपील आते हैं जहाँ हम पाते हैं कि महत्वपूर्ण अभियोजन साक्ष्य धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत बयान में अभियुक्त के समक्ष नहीं रखा गया। न्यायालय असहाय हो जाता है क्योंकि लम्बे समय के व्यतीत होने के कारण प्रत्यावर्तन आदेश पारित करके त्रुटि का निदान सम्भव नहीं रहता। राज कुमार बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) के प्रकरण में इस न्यायालय ने इस मुद्दे से निपटा। पैरा 29 और 30 में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :

"29. अनेक आपराधिक विचारणों में बड़ी संख्या में साक्षियों की परीक्षा की जाती है और साक्ष्य विशाल होता है। यह सत्य है कि न्यायिक अधिकारियों को धारा 313 के महत्व को समझना होगा। किन्तु अब न्यायालय प्रासंगिक प्रश्न तैयार करने में अभियोजक और प्रतिरक्षा अधिवक्ता की सहायता लेने का अधिकारी है। इसलिए जब विचारण न्यायाधीश धारा 313 के अन्तर्गत अभियुक्त से पूछे जाने वाले प्रश्न तैयार करे, तो प्रश्न अभियुक्त के समक्ष रखने से पूर्व न्यायाधीश सदैव विद्वान लोक अभियोजक एवं विद्वान प्रतिरक्षा अधिवक्ता को उक्त प्रश्नों की प्रतियाँ प्रदान कर सकता है और यह सुनिश्चित करने के लिए उनकी सहायता माँग सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रकट होने वाली प्रत्येक सुसंगत सारभूत परिस्थिति उसके समक्ष रखी जाए। जब न्यायाधीश अभियोजक और प्रतिरक्षा अधिवक्ता की सहायता माँगे, तो अधिवक्ताओं को न्यायालय के अधिकारी के रूप में कार्य करना चाहिए न कि अपने-अपने मुवक्किलों के प्रवक्ता के रूप में। अभियोजन के बड़ी संख्या में साक्षियों वाले प्रकरणों में धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत बयान दर्ज करते समय न्यायिक अधिकारियों को धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता की उप-धारा (5) का लाभ उठाना उचित होगा, जिससे त्रुटियों एवं चूकों की सम्भावना न्यूनतम हो सकेगी।"

41. न्यायालय पाता है कि वर्तमान प्रकरण में की गयी विवेचना गम्भीर चूकों और अस्पष्टीकृत लोपों से दूषित है जो अभियोजन के प्रकरण की जड़ पर ही प्रहार करती है। यद्यपि

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



मृतका का प्रारम्भ में जिला चिकित्सालय, लखीमपुर खीरी में उपचार हुआ और तत्पश्चात् अपनी मृत्यु तक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी सिविल अस्पताल, लखनऊ में उपचाराधीन रही, किन्तु विवेचना अधिकारी उक्त अस्पतालों के बेड हेड टिकट अभिलेख पर रखने में विफल रहा। इसके अतिरिक्त, लखनऊ के उपचार करने वाले चिकित्सकों के बयान दर्ज नहीं किये गये, जहाँ मृतका ने अन्ततः दम तोड़ा। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि डॉ. राजेश कुमार (पी.डब्ल्यू.-12) के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि चिकित्सालय अभिलेख स्पष्ट रूप से संकेत करते हैं कि दिनांक 17.06.2018 को पीड़िता/मृतका का पूर्व मृत्युपूर्व कथन/बयान दर्ज किया गया था। अभियोजन ने न तो उक्त बयान प्रस्तुत किया और न ही उसे प्रस्तुत न करने का कोई स्पष्टीकरण दिया। ऐसे पूर्व मृत्युपूर्व कथन का अस्तित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है, विशेषकर इसलिए कि परवर्ती मृत्युपूर्व कथन दिनांक 27.06.2018 में चिकित्सीय साक्ष्य और प्राथमिकी संस्करण दोनों के साथ सारभूत विरोधाभास हैं। विवेचना अधिकारी द्वारा इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं की व्याख्या न करने से उनकी विवेचना के प्रति उदासीन और सतही दृष्टिकोण झलकता है। इस सन्दर्भ में अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **इरफान उर्फ नाका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (सुप्रा)** में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर आश्रय लिया है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की हैं :-

"63. अभियोजन का यह दायित्व है कि वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप को उचित संदेह से परे सिद्ध करे। संदेह का लाभ सदैव अभियुक्त के पक्ष में जाना चाहिए। यह सत्य है कि मृत्युपूर्व कथन एक सारभूत साक्ष्य है जिस पर विश्वास किया जा सकता है बशर्ते यह सिद्ध हो कि वह स्वैच्छिक और सत्य था तथा पीड़िता उचित मानसिक दशा में थी। यह न्यायालय के लिए पर्याप्त नहीं है कि केवल यह कह दे कि मृत्युपूर्व कथन विश्वसनीय है क्योंकि उसमें अभियुक्त को हमलावर के रूप में नामजद किया गया है।

64. ऐसे प्रकरणों में जहाँ, जैसे वर्तमान प्रकरण में, मृत्युपूर्व कथन की शुद्धता के सन्दर्भ में संशय उत्पन्न हो, केवल उसी के आधार पर दोषसिद्धि दर्ज करना असुरक्षित है। ऐसे प्रकरणों में न्यायालय को मृत्युपूर्व कथन को केवल एक साक्ष्य के रूप में मानते हुए कुछ संपुष्टिकारी साक्ष्य खोजना पड़ सकता है। उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और सामग्री का प्रत्येक प्रकरण में समुचित रूप से विश्लेषण किया जाना चाहिए।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



65. **सुजीत बिस्वास बनाम असम राज्य (2013) 12 SCC 406** में इस न्यायालय ने पैरा 13 में 'उचित संदेह से परे प्रमाण' और 'संशय' के बीच अन्तर की जाँच करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है :-

"13. संशय, चाहे वह कितनी भी गहरा हो, प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता और 'जो साबित हो सकता है' और 'जो साबित होगा' के बीच बड़ा अन्तर है। आपराधिक विचारण में संशय, चाहे कितनी भी तीव्रता से हो, प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता और न लेने दिया जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के मध्य मानसिक दूरी काफी है और यह अस्पष्ट अनुमानों को निश्चित निष्कर्षों से अलग करती है। आपराधिक प्रकरण में न्यायालय का यह दायित्व है कि केवल अनुमान या संशय प्रमाण का स्थान न लें। 'हो सकता है' सत्य और 'होना चाहिए' सत्य के बीच की बड़ी दूरी अभियोजन द्वारा प्रस्तुत स्पष्ट, सुगठित और अखण्डनीय साक्ष्य से पूर्ण की जानी चाहिए, तब से पहले किसी अभियुक्त को दोषी घोषित किया जाए, और मूलभूत एवं सुवर्ण नियम का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे प्रकरणों में 'हो सकता है' सत्य और 'होना चाहिए' सत्य के बीच की दूरी को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को केवल अनुमानों और निश्चित निष्कर्षों के बीच महत्वपूर्ण दूरी बनाये रखनी चाहिए जो निस्पक्ष न्यायिक जाँच की कसौटी पर, प्रकरण की समस्त विशेषताओं एवं अभिलेख पर आये साक्ष्य की गुणवत्ता और विश्वसनीयता के पूर्ण और व्यापक मूल्यांकन के आधार पर पहुँचे जाएँ। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्याय का दुराचरण न हो और यदि प्रकरण के तथ्य एवं परिस्थितियाँ इसकी माँग करें, तो अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए, यह ध्यान रखते हुए कि उचित संदेह कोई काल्पनिक, तुच्छ या मात्र सम्भावित संदेह नहीं है, बल्कि एक न्यायोचित संदेह है जो तर्क और सामान्य बोध पर आधारित हो।"

66. यह सत्य हो सकता है जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **धर्म दास वाधवानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1974) 4 SCC 267** के प्रकरण में अभिनिर्धारित किया है कि उचित संदेह का नियम यह नहीं सुझाता कि हर संकोच की हवा में झुकने वाली कमज़ोर विलो की शाखा। न्यायाधीश दृढ़ चट्टान से बने होते हैं और उन्हें साक्ष्य से प्रवाहित होने वाले वैध अनुमानों का व्यावहारिक दृष्टिकोण लेना चाहिए, चाहे वे परिस्थितिजन्य हों या प्रत्यक्ष। इस

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



सिद्धान्त को लागू करने पर भी हमें अपीलार्थी-दोषी के अपराध में संलिप्तता के सन्दर्भ में संदेह है।"

42. मृत्युपूर्व कथन पर साक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करता और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। वर्तमान प्रकरण में केवल मृत्युपूर्व कथन के आधार पर दोषसिद्धि करना कठिन है। जैसा कि ऊपर विवेचित किया गया है, मृत्युपूर्व कथन पर साक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करता और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हम सन्तुष्ट नहीं हैं कि अभियोजन ने अपीलार्थी-दोषी के विरुद्ध उचित संदेह से परे अपना प्रकरण सिद्ध किया है।

43. घटना दिनांक 16.06.2018 की बताई जाती है, मृत्युपूर्व कथन दिनांक 27.06.2018 को दर्ज बताया जाता है और पीड़िता की मृत्यु दिनांक 05.07.2018 को बताई जाती है। मृत्यु का कारण सेप्टिसीमिया दर्शाया गया है। इस सन्दर्भ में पिता (पी.डब्ल्यू.-1) की स्वयं की यह गवाही - "मेरे मरीज को लखनऊ के लिए रेफर किया गया था और एम्बुलेंस-108 आ गयी थी, परन्तु मैं अपने मरीज को लखनऊ नहीं ले गया और मैंने एम्बुलेंस वापस कर दी" - सुसंगत है। चिकित्सकों द्वारा रोगी को लखनऊ में उपचार के लिए भेजे जाने के बावजूद राजू (पी.डब्ल्यू.-1) उसे वहाँ नहीं ले गया और उसका उपचार जिला चिकित्सालय, खीरी में ही चलता रहा। केवल जब उसकी हालत बिगड़ी, तब वह दिनांक 27.06.2018 को लखनऊ ले जाई गयी जहाँ उसकी मृत्यु हुई। समय-व्यतीत और राजू (पी.डब्ल्यू.-1) का आचरण बहुत कुछ बोलता है। इन परिस्थितियों और हमारे समक्ष साक्ष्य को देखते हुए अपीलार्थी को हत्या का दोषी ठहराना सम्भव नहीं है।

44. यह भी सुस्थापित है कि जहाँ विवेचना दूषित, अनुचित अथवा अव्यवस्थित ढंग से की गयी हो और अभियोजन साक्ष्य अन्यथा उचित संदेह से परे प्रकरण स्थापित करने में विफल हो, तो अभियुक्त संदेह का लाभ पाने का अधिकारी है। वर्तमान प्रकरण में दोषपूर्ण विवेचना इस निष्कर्ष को और पुष्ट करती है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम नहीं रह सकती। अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध हत्या का आरोप उचित संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा है।

45. विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्युपूर्व कथन, जो अपीलार्थी की दोषसिद्धि के लिए आधार बनाया गया एकमात्र साक्ष्य है, के साक्ष्यिक मूल्य का मूल्यांकन करने में त्रुटि की है

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



और उसने इस विषय पर उपर्युक्त विवेचित विधि को ध्यान में नहीं रखा। उसने प्राथमिकी और साक्षियों के बयानों में अपराध घटित होने के समय तथा मृत्युपूर्व कथन में उल्लिखित समय के मध्य विसंगति को भी केवल अनुमानों के आधार पर, अभियोजन के प्रकरण पर जो सारभूत प्रभाव पड़ता है उसे नज़रअंदाज़ करते हुए, सरसरी तौर पर खारिज कर दिया। अतः विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषी ठहराने और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध करने के आरोप में उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाने में त्रुटि की है।

46. उपर्युक्त के दृष्टिगत अपील **स्वीकार** की जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 15/2019, वाद अपराध संख्या 198/2018, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302, थाना-खीरी, जिला-लखीमपुर खीरी में पारित दिनांक 06.05.2022 का दोषसिद्धि का निर्णय एवं आदेश अपास्त किया जाता है। अभियुक्त-अपीलार्थी सुजीत को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध से दोषमुक्त किया जाता है। यदि किसी अन्य अपराध में अपेक्षित न हो, तो उसे तत्काल कारागार से मुक्त किया जाए। यदि जुर्माने की राशि जमा की गयी हो तो वह अभियुक्त को वापस की जाए।

47. अभियुक्त-अपीलार्थी, नामतः सुजीत, को तत्काल मुक्त किया जाएगा जब तक कि वह किसी अन्य प्रकरण में वांछित न हो, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 437-A के अनुपालन के अधीन।

48. विचारण न्यायालय का अभिलेख इस निर्णय एवं आदेश की प्रति सहित तत्काल सम्बन्धित न्यायालय को प्रेषित किया जाए।

49. इस निर्णय की एक प्रति अनुपालन के लिए सम्बन्धित कारागार प्राधिकारियों और सम्बन्धित न्यायालय को भेजी जाए।

(राजीव भारती, न्यायमूर्ति) (राजन राँय, न्यायमूर्ति)

आदेश दिनांक :- 09.02.2026

आनंद

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



Translated version. Not for Legal Use.

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"